जिहाद और जंग,,,,,सीरते हुसैनी के आइने में

सदरूल उलमा आयतुल्लाह सय्यद बाक़िर नक़वी साहब क़िबला, दुबई

अल्लाह जाने कारवाने हयाते बशर कहाँ से चला है और किस सम्त को राह सिपार है? हाँ! इतना ज़रूर मालूम है कि शाहराहे तरक़्क़ी पर गामज़न है और हर आन तरक़्क़ी की तरफ़ बढ़ रहा है। सैकड़ों और हज़ारों साल क़ब्ल नौए इंसानी के वह गिरोह जो रेगिस्तानों, सहराओं, जंगलों, कोहसारों, पहाड़ों और ग़ारों में ज़िन्दगी गुज़ारा करते थे आहिस्ता–आहिस्ता च्यूंटी ही की चाल से सही, मुहज़्ज़ब, मुतामद्दिन और तरक़्क़ी याफ़ता होते गए। पहले छोटी–छोटी बस्तियां बसाईं जो बढ़ते–बढ़ते गाँव और क़रये की शक्ल में बदलती गईं। यह क़रये क़ौमी सरदारों और ताक़तवर सरबराहों की क़ुव्वत और ताक़त के सहारे आस–पास के खेतों, गिर्द व नवाह की चरागाहों और अतराफ़ व जवानिब की शिकार गाहों को ललचाई हुई नज़रों से देखते और जंग व जिदाल, खून ख़राबा करके उनपर क़ाबिज़ हो जाया करते थे जिस क़रये ने ताक़त के बल–बूते पर अपनी पड़ोसी बस्ती को ज़ेर कर लिया उसकी आबादी, क़ुव्वत और सरवत बढ़ गई। इसी तरह शहरों का वजूद मुनस्सए शुहूद में आया। यह इंसान मिल–जुल कर रहने का आदी और मदनियुत्तब (तहज़ीब वाला)वाक़े हुआ है। इश्तेराके अमल और तआवुन के बेग़ैर ज़िन्दा रहना इसके लिए मुमकिन नहीं है। जब चन्द घराने यकजा आबाद हुए तो सनअत व हरफ़त ने जन्म लिय और मसनूआत को ख़रीदार तक पहुंचाने और एक जगह की पैदावार को दूसरी जगह ले जाने के लिए कारोबार और व्यापार की ज़िन्दगी का आग़ाज़ हुआ।

आदम ज़ाद अपनी पैदाइश के वक़्त दुनिया वमा फ़ीहा से बेख़बर होता है इसके बाद सबसे पहले उसको अपनी ज़ात का शऊर हासिल होता है। फिर अपने ख़ानदान, अइज़्ज़ा व अक़रबा से आशना होता है। आगे चलकर शहर के रहने वालों और आस–पास के बसने वालों से मुतारिफ़ और रूशनास होता है। उम्र बढ़ती है शऊर तरक़्क़ी पाता है तो मुल्क के झगड़ों बखेड़ों में हिस्सा लेने लगता है। इल्मे अख़लाक़ की इस्तेलाह में अफ़राद की इसी जिद्दो जोह्द और कोशिश को जो वह अपनी ज़ात की इस्लाह के लिए करते हैं तहज़ीबे नफ़्स कहा जाता है। अपने ख़ानदान और घरेलू ज़िन्दगी के लिए जो इस्लाही इक़दामात किए जाते हैं उनको तदबीरे मंज़िल का नाम दिया जाता है। सोसायटी और समाज के मफ़ाद की ख़ातिर जो ख़िदमात अनजाम दी जाती हैं उनको हुस्ने मुआशरत से ताबीर किया जाता है और मुल्क व क़ौम, रियासत व ममलकत के लिए दौड़–धूप को सियासते मुदुन के मशहूर नाम से पुकारा जाता है और जब यह अफ़राद मुख़तलिफ़ अक़वाम व मलल के हालात और मुआमलाते नौए इंसानी से दिलचस्पी का इज़हार करते हैं तो उनकी सई व कोशिश को ताल्लुक़ाते बफनुल मेलली का नाम दिया जाता है। सियासते फ़ाज़िला का सीधा और सही गुर तो यही है कि ख़ुदा वन्दे आलम ख़ालिक़े कायनात भी है और

मुख़तारे कुल और इक़तेदारे आला भी उसी के हाथ में है उसी ने हम सबको पैदा किया और पैदा करके मुतलकुल एनान छोड़ नहीं दिया बल्कि हमारी रहबरी और राहनुमाई के लिए आईन व क़वानीन भी बनाकर भेज दिए हैं। कायनात का एक–एक ज़र्रा उसकी मिलकियत है। हमको उसने ताक़त व कुव्वत मरहमत फ़रमाई है। उसकी बदौलत हम दौलत कमाते और मालदार बन जाते हैं। उस माल व दौलत के मालिक नहीं बल्कि अमीन की हैसियत से उसके मुअय्यन करदा क़वानीन के मुताबिक़ सर्फ़ कर सकते हैं। इंसान ने इस फ़ितरी उसूल को नज़र अंदाज़ करके बड़ी ठोकरें खाई हैं। वह अल्लाह की ममलूका ज़मीन में उसका अमीन और नाएब बनने के बजाए खुद एक बाग़ी और मुस्तक़िल हुक्मरान बन गया और हर काम में मन मानी शुरू कर दी।

शुरू–शूरू में तो सब लोग बराबर समझे जाते थे फिर मालदार और नादार, काले–गोरे का फ़र्क़ पैदा हुआ। होशयार और चालाक लोगों ने कमज़ोरों को दबाना शुरू किया। माल व दौलत, क़हर व ग़लबा और धोका धड़ी के बल–बूते, अपनी क़यादत, इमारत, हुकूमत और शहनशाहियत की बुनियाद डाली और सादा लौह बनी आदम को धोके में रखने के लिए झूटे फ़लसफ़े और सियासत नामे मुरत्तब किए। वादी–ए–दरियाए नील, फुरात व दजला का दो आबा, ईरान और तूरान के मैदान, सिन्ध और उसके मुआविन दरियाओं से सेराब होने वाली ज़मीनें, गंगा और जमना के सर सब्ज़ व शादाब किनारे और हाँगो और यांग सी कियांग के ज़रख़ेज़ साहिल ग़रज़ जहाँ–जहाँ तमद्दुने बशरी ने जन्म लिया और सक़ाफ़त व तहज़ीब ने बर्ग व बार पैदा किए, वहाँ यह बात तसलीम की जाने लगी कि जो भी ताक़त व कुव्वत के ज़ोर पर हुक्मरान बन जाता है उसके मुंह से निकली हुई हर बात क़ानून होती है और उसका हर अमल हक़ का मेयार और हर फ़ेअल क़ाबिले सताइश होता है।

वह झूट बोले तो उसको सच समझो, वह दिन को रात और रात को दिन, तारीकी को उजाला और उजाले को तारीकी बताए तो उसकी ताईद करो। क़ानूने फ़ितरत में खूँरेज़ी बुरी चीज़ है। नाहक़ इंसान को मौत का निवाला बना लेना गुनाह है लेकिन जब फ़रमाया रवाए ममलकत खून बहाता है और एक दो नहीं, हज़ारों को मौत के घाट उतार देता है तो उसका यह काम पाप नहीं पुन। बुराई नहीं अच्छाई से बदल जाता है। अहदे क़दीम के मैदाने सियासत के क़एदीन बादशाह को राई और मुल्क के बाशिंदों को रिआया के नाम से पुकारते थे आज भी उसी दस्तूर पर अमल दर आमद है। क्या मतलब? यानी भेड़ों के गल्ले को जो चरवाहे से निस्बत है वही निस्बत मुल्क के रहने वालों को वहाँ के बादशाह से है जिस तरह चरवाहा, भेड़ों का ऊन काटता, उनका दूध पीता और ज़रूरत पड़ने पर उनको ज़िब्हा करके उनका गोश्त भी खा जाता है उसी तरह बादशाह अपनी रिआया के जिस्म व जान और दीन व ईमान का मालिक है और जब मालिक है तो उससे बाज़ पुर्स कैसी, अद्ल व इंसाफ़ और रहम व करम का क्या सवाल? जब वक़्त व बख़्त का हुमा किसी के सर पर साया फ़िगन होकर उसको चत्रे शाही और तख़्ते हुक्मरानी का मालिक बना देता था तो उसकी हर नक़्ल व हरकत सनद और हर क़ौल व अमल क़ाबिले तक़लीद हो जाता था। वह क़ानून का सर चश्मा, इख़तेयार व इक़तेदार का ममबा और

हक़ व इंसाफ़ का मअद्दिन बन जाता था। उसके दरबार में बोली जाने वाली ज़बान टकसाली और उसके मुंह से निकला हुआ हर लफ़्ज़ फ़सीह समझा जाता था। हज़ारों साल से सियासत की बुनियाद मक्कारी और फ़रेब पर है लिहाज़ा वही शातिर बिसात सियासत पर कामयाब रहता है जो सबसे ज़ियादा धोका दे सकता हो। क्या आपके ज़हनों से यह बात निकल गई कि अरब अमीरे शाम की सियासत का लोहा मानते और हज़रत अली(अ0) की मुल्की मस्लहेतों और दीनी बसीरतों को क़ाबिले एतेना नहीं समझते थे। आख़िर हज़रत को इज़हार फ़रमाना पड़ा। ''वल्लाहि मा मुआवियतु बिअदहा मिन्नी वलाकिन्नहु यफ़जुरू व यग़दिरू वलौ ला कराहियतुल ग़द्रि लकुनतु मिन अदहयन्नास''। रब्ए मसकून पर नस्ले इंसानी की तग व दू, जिद्दो जोह्द और नक़ल व हरकत का बयान तारीख़ कहलाता है और उसका सरसरी मुतालआ करने वाले भी जानते हैं कि अबुल बशर से लेकर इस वक़्त तक यहाँ ख़ैर व शर, नूर व जुल्मत और अद्ल व जुल्म में मुसलसल कशमकश रही है। ख़ुदा वन्दे आलम ख़ैर व बरकत का सर चश्मा है, उसके नाएब ख़ैर को फैलाने, अंधेरे को उजाले से बदलने और जुल्म इस्तेबदाद को मिटाकर अद्ल व इंसाफ़ क़ायम करने की जिद्दो जोह्द में हमेशा मशगूल रहे मगर शर पसंद और फ़ितना व फ़साद की खूगर कुव्वतें उनके सामने सफ़ आरा होती और नित नए हरबों से ख़ैर को फ़ैलने से रोकती रहीं। इस कुर्रए ख़ाकी पर क्या मुनहसिर पूरी कायनात में मनफ़ी और मुसबत उनसरों की कारफ़रमाई है। सारा निज़ामे हयात मजमू–ए–इज़दाद है। ऐटम के अन्दर मनफ़ी और मुसबत ज़र्रात की तग व दू ही बज़्मे वजूद की आराइश व ज़ेबाइश का सबब बनती है और नफ़्से इंसानी में जज़बात मुताक़ाबिला की कशमकश और दारोगीर ही आदमी को मुतलक़ हैवान से मुमताज़ करती है।

यह अजाएब ख़ानए फ़ितरत जिसमें इंसान अशरफुल मख़लूक़ात बना बैठा है इज़दाद का जलवा ख़ाना है। यहाँ चीज़ें अपनी ज़िद के बेग़ैर पहचानी ही नहीं जा सकती हैं। ''तारिफुल अशया बिअज़दादिहा'' अंधेरा न हो तो उजाले की क़द्र कैसे हो, तलख़ी के बेग़ैर शीरीनी का क्या लुत्फ़ जो दुःख से दो चार न हुआ वह सुख को क्या समझे? जब तक कायनात में ज़िन्दगी, शऊर व इदराक के साथ मौजूद है हक़ व नाहक़, ख़ैर व शर और नूर व जुल्मत की कशमकश भी बाक़ी रहेगी। कायनात में चहल–पहल और धूम–धाम इसी कशमकश की वजह से है और हयाते इंसानी का कारवां इसी तनाज़ो लिलबक़ा की बदौलत रवां–दवां नज़र आता है। रास्ते में बहुत से मोड़ ऐसे आते हैं जब इस कारवां के क़दम डगमगाने लगते और घात में लगे हुए रजअत पसंद डाकू और जुल्मत खेज़ क़ज़्ज़ाक़ इस क़ाफ़िले पर छापा मारने पर तुल जाते हैं मगर देखते ही देखते तरक़्क़ी पसंद कुव्वतें मैदान में नमूदार होकर कारवान को तबाही से बचा लेती हैं।

60हि0 में यज़ीद ने अपने आवान व अनसार समैत नस्ले बशरी की तरक़्क़ी की राह रोकनी चाही थी। रसूले अकरम(स0) ने आज़ादिए फ़िक्र व बयान और हुर्रियते अमल व इक़ान की जो शमें जलाई थीं। अद्ल व मसावात की जिस शाहराह पर नस्ले इंसानी को डाल दिया था। यज़ीद उससे बनी आदम को महरूम करना चाहता था। इमाम हुसैन(अ0) ने जो वारिसे

रिसालत मआब(स0) होने के साथ–साथ वारिसे आदम(अ0) भी थे। आगे बढ़ कर उसको ललकारा और अपनी हिकमते अमली से तमद्दुन,तहज़ीब, सक़ाफ़त और तरक़्क़ी के अमल को तेज़ कर दिया। यज़ीद अपने आपको दाई–ए–इनक़ेलाब, मुस्लहे अख़लाक़, पैग़म्बरे अद्ल व इंसाफ़ का जानशीन कहता था और उनका नाम लेकर तारीख़ के अमल इस्लाह का रूख़ मोड़ना चाहता था, इमाम हुसैन(अ0) ने उसे बेनक़ाब कर दिया और मुख़तसर से गिरोह को साथ लेकर उसकी तागूती और साम्राजी ताक़तों का इस बहादुरी से मुक़ाबला किया कि सारे मुआशरे की आँखें खुल गईं और उसके मनसूबे ख़ाक में मिल गए। हम हर साल करबला की तारीख़ी जंग की यादगार मनाते हैं। एशिया, अफ़रीक़ा और यूरोप में जहाँ–जहाँ ज़ालिम दुशमन और मज़लूम दोस्त क़ौमें बस्ती हैं वहाँ यह दास्ताने ग़म बार–बार दोहराई जाती है और हुकूक़े इंसनी की तलबगार हस्तियां इस मुख़तसर गरोह की शुजाअत, हिम्मत और बे जिगरी का ज़िक्र सुनकर अश–अश करती हैं। जिसने आप से डेढ़ हज़ार साल क़ब्ल इस्तेबदाद और इंसानियत सोज़ इक़तेदार के ख़िलाफ़ मुअस्सिर आवाज़ बलंद की थी। यह बीसवीं सदी है और दुनिया एक दो नहीं बीसों ऐसी जंगें देख चुकी है जिसमें लाखों आदमियों ने सफ़ आराई की थी और नतीजे में शहर ही नहीं बल्कि मुल्क के मुल्क तबाह हो गए। कर्बला की जंग इस वजह से यादगारे ज़माना नहीं है कि उसमें इतनी फ़ौजें जमा हुई थीं जितनी किसी जंग में जमा न हो सकी थीं या ऐसे अस्लहे इस्तेमाल हुए जिसकी नज़ीर दूसरी जगह नहीं मिलती या जंगे करबला बे नज़ीर है और ज़रूर बे नज़ीर है मगर वह बे मिसाल इस लिए है कि उसके नताएज वाज़ेह, फ़ैसला कुन और क़तई थे।

उसने एक तरफ़ इमाम हुसैन(अ0) के मौक़िफ़ की वज़ाहत कर दी, उनके मिशन को साफ़ तौर पर दुनिया के सामने पेश कर दिया और दूसरी तरफ़ यज़ीद को बे नक़ाब कर दिया और उस साज़िश को वाज़ेह कर दिया जो उसने और उसके आवान व अनसार ने नौए इंसानी की आज़ादी छीनने के लिए की थी। यज़ीद और उसके पेश रवों ने अफ़रादे इंसानी से जुरअत इज़हारे हक़ व हक़्क़ानियत को सल्ब करने की कोशिश की थी, दीन और मज़हब के नाम पर ला दीनी और ला मज़हबियत को रवाज देना चाहा था। जंगे करबला का मक़सद यज़ीद या इमसाले यज़ीद का फ़ना करना न था बल्कि यज़ीदियत और मक़सदे सज़ीद को तहस–नहस करना था। जिसको हम दौराने गुफ़्तगू में वाज़ेह करेंगे। फ़ुरात व दजला से सेराब होने वाली सरज़मीन बड़ी तारीख़ी हैसियत रखती है। यहाँ किसी ज़माने में कलदानिया, बाबली और इशोरिया की तहज़ीब व सक़ाफ़त क़ायम रह चुकी थी। यहाँ दुनिया का सबसे क़दीम तहरीरी आईन तहरीर किया गया था। यहाँ बाबुल का मशहूर मिनारा सरबलंद रह चुका था। यहाँ नैनवा की क़दीम अज़मत के खंडर मौजूद थे। यहाँ की सरज़मीन ने ख़लीले ख़ुदा ''इबराहीम(अ0)'' और ज़बीहे ख़ुदा ''इस्माईल(अ0)'' के क़दम चूमे थे और कुफ़्र व शिर्क की घंघोर घटा में सिराजे तौहीद की रोशनी देखी थी। उस वादी में ख़ुदा परस्त ख़लील ने शाही बुत कदे को वीरान किया था और आतशे नमरूद को गुलज़ार बनाया था और यही ज़मीन थी जिसपर हुसैन(अ0) बातिल को ललकार रहे थे। उनके बहादुराना तेवर और मुस्लेहाना अंदाज़ बता

रहे थे कि यज़ीद लात व मनात व हुबल का पुजारी, नमरूद व फ़िरऔन व शद्दाद और अबू लहब व अबू जहल का जा नशीन है और हुसैन(अ0) उलूही परचम के अलमबरदार इबराहीम(अ0), मूसा(अ0) व ईसा(अ0) के वारिस और अपने नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा(स0) के दीन के दाई व मुहाफ़िज़ हैं। भूक और प्यास के आलम में जब मैदाने कारज़ार गर्म था, तीर ज़न–ज़न इधर से उधर गुज़र रहे थे, तलवारों की बिजलियाँ कोंद रही थीं। घोड़ों का हिनहिनाना और ऊँटों का बिलबिलाना गरज का समां पेश कर रहा था, सरों की बारिश हो रही थी और ख़ून का सैसाब उमड़ रहा था। क़ल्ब व जिगर के टुकड़े, वफ़ादार साथी और क़द्र शनास दोस्त ख़ाक व ख़ून में लोट रहे थे। मगर न क़ल्ब में आतशे इंतेकाम भड़की और न लब पर हरफ़े शिकायत आया। जवान बेटे की लाश नज़र आई तो शुक्र का सजदा अदा किया। चहीते भतीजे की मय्यित उठाई मगर तेवरियों पर बल नज़र नहीं आए। बराबर के भाई को दम तोड़ते देखा लेकिन सब्र व ज़ब्त को हाथ से जाने न दिया। छः महीने का बच्चा तीरे जुल्म अपने गले पर लेकर जन्नत को सिधारा और आप ''रिज़न बेक़ज़ाएही व तसलीमन लेअम्रेही'' का मुजस्समा बने रहे और जब क़ातिल का ख़न्जर खुश्क गले पर चलने लगा तो उम्मत की नजात की दुआ और अल्लाह की अज़मत व किबरियाई के इक़रार के सिवा ज़बान पर कोई ज़िक्र न था। अब ज़रा कूफ़े की दलदल फ़ौज की तरफ़ नज़र उठाकर न देखिए। वह नाहक़ शनास, एहसान फ़रामोश, संगदिल और जफ़ा पेशा सिपाही किसी उसूल व आईन के तहत नहीं बल्कि शाही वज़ीफ़े और सरकारी इनआम व इकराम की लालच में नबी के नवासे और हामी–ए–हुकूक़े नौए इंसानी का खून बहाने पर तुले हुए थे। दोनों फ़रीक़ के आमाल व अफ़आल, इरादों और अज़ाएम का जायज़ा लेने गए यह वाज़ेह तौर पर मालूम हो रहा था कि एक तरफ़ नूर है और दूसरी तरफ़ जुल्मत, एक तरफ़ हक़ है दूसरी तरफ़ बातिल, एक हक़ व हक़्क़ानियत पर जान देने वाला और दूसरा बातिल व ज़लालत पर मर मिटने वाला।

इमाम हुसैन(अ0) ग़ैज़ व ग़ज़ब से मग़लूब और ग़म व गुस्से की वजह से बेक़ाबू होकर इक़दामात नहीं कर रहे थे। उनके सामने एक मुरत्तब लाइहे अमल और पहले से सोचा समझा मनसूबा था। वह कलम–ए–हक़ की सरबलंदी के लिए उठे थे और अल्लाह के बताए और रसूल अल्लाह के आज़माए हुए उस कारगर नुस्ख़े पर अमल करके फ़त्हा हासिल करना चाहते थे जिससे छोटे–छोटे गिरोहों को बड़े–बड़े लशकरों पर ग़लबा हासिल करने की तौफ़ीक़ मिल जाती है। हुसैन(अ0) की क़ायदाना सलाहियत और इलाही सियासत का कमाल यह था कि पूरी जंग मुदाफ़ियाना उसूल पर लड़ी। हमले में कभी पहल नहीं की। भागते का तआकुब नहीं किया और हमलावरों को हत्तल इम्कान उनके नापाक अज़ाएम से बाज़ रखने की तलक़ीन फ़रमाई। आपकी सीरत और किरदार साफ़ तौर से इस्लाम के नाम पर आम जंगों और जिहादे इस्लामी के दरमियान हदे फ़ासिल क़ायम करता है। आम तौर पर जंग, यह एक हरीसाना अमल या इंतेक़ामी इक़दाम का नाम रख लिय गया है जिसमें हरीफ़ पर ग़लबा पाने के लिए जायज़ व ना जायज़ किसी हरकत से दरेग़ नहीं किया जाता है। और जिहादे इस्लामी, यह एक इबादत है जिसमें रिज़ाए इलाही हासिल करने और एलाए कलमए हक़ का

जज़्बा शामिल होता है। बात की पच, ख़्वाह–मख़्वाह की तबाही, तौसी–ए–ममलकत और तहसीले माल उसकी ग़रज़ नहीं होती है।

इस्लाम की सारी इबादतों की तरह जिहाद भी ''लिवजहिल्लाह होता है'' उसके भी आदाब व क़वायद व शराएत, अरकान और वाजिबात होते हैं। यह इमामे अद्ल की क़यादत में, हक़ की हिफ़ाज़त व हिमायत के लिए अदा किया जाता है। तलवार लेकर लड़ना मरदों के लिए है और घर के महाज़ की हिफ़ाज़त और ज़ख़्मियों की मरहम पट्टी का काम औरतें भी कर सकती हैं। पुराने ज़माने में जंगें ज़र, ज़मीन और ज़न के लिए लड़ी जाती थीं और आज नस्ले इंसानी उसी महवर पर गरदिश करती नज़र आती है, शातिर, मौक़ा परस्त और चालाक लोग अपने इक़्तेदार की ख़ातिर गरोहों, जमाअतों और क़ौमों को लड़ा दिया करते थे। आज भी ऐसा ही हो रहा है। काश मुसलमान की आँख खुल जाए और मुस्लह व मुफ़सिद में तमीज़ करने लगे। बेचारे अवाम जज़्बाती होते हैं, हमारे इक़्तेदार दोस्त इस्लामी क़ाएदीन भोले–भाले अवाम के जज़्बात से खेलते हैं। मुझे यक़ीन है कि आज–कल के फ़िरक़ा वाराना फ़सादात में ख़्वाह शिया–सुन्नी फ़सादात हों या हिन्दू–मुस्लिम नज़ाएं या कोई और बाहमी झगड़ा, इस्तेमारी ग़ैर मुल्की हाथ के अलावा रियासत की ख़्वाहिश, इक़्तेदार की चाहत और रहनुमाई और लीडर शिप की ललक कारफ़रमा ज़रूर है। हाँ तो मैं यह कह रहा था कि अगले ज़माने में मौक़ा परस्त अफ़राद अपनी क़यादत व रियासत की ख़ातिर क़ौमों को लड़वाकर मुल्कों पर क़ब्ज़ा करके वहाँ की आबादी को इतना बे दस्तो पा बना दिया करते थे कि जुल्म व जौर सहने वाली मख़लूक़े ख़ुदा एहतिजाज भी नहीं कर सकती थी। सरकश और बग़ावत खू लोगों को रिशवत की ख़्वाब आवर गोलियाँ दे देते थे और मेहनत कश नादारों को जब्र व तशद्दुद के शिकंजे में जकड़े रहते थे। हुकूक़े इंसनी का शऊर अभी बेदार नहीं हुआ था और रिआया के अन्दर राई के ख़िलाफ़ आवाज़ बलंद करने की जुरअत अभी पैदा नहीं हुई थी। क़हरमाने दमिश्क़ ने जब इस्लाम के अता करदा हुकूक़े इंसानी को पामाल करना शुरू किया और मुआशरे से इज़हारे राय और आज़ादी–ए–अमल की नेमत को छीनना चाहा तो परवरदए आग़ोशे रसूल(स0) हुसैन(अ0) ने चाहा कि दुनिया को इस लानत से नजात दिलाएं।

यह ज़िक्र है उस वक़्त का जब फ्रांस के इन्क़ेलाब का ख़्वाब भी किसी ने नहीं देखा था और इन्क़ेलाबे रूस का क्या ज़िक्र। रूस के नाम से भी दुनिया आशना न हुई थी। मगर इमाम हुसैन(अ0) ने उस घर में परवरिश पाई थी जहाँ से मनशूरे इस्लामी शाए हुआ था, जिसने इंसानी हुकूक़ मुअय्यन और मुक़र्रर किए थे। रसूले मक़बूल(स0) की तालीम व तरबियत और कुरआन की हुर्रियत साज़ तबलीग़ अगर आज न काम आई तो किस दिन काम आती? यह समझना ग़लत है कि इमाम हुसैन(अ0) ख़्वाह–मख़्वाह मुख़ालेफ़त मोल लेने के आदी और सरकशी व बग़ावत पर आमादा थे। सहीफ़ए कारनामए हुसैनी के अवराक़ उजलत के साथ न उलटिए। हर सफ़हे पर ग़ौर कीजिए और आपकी ज़िन्दगी के तदरीजी हालात पर रुक–रुक कर नज़र डालिए। आपकी रविश शुरू से लेकर आख़िर तक मुसालेहाना रही है। जब बड़े भाई इमाम हसन(अ0) ने अमीरे शाम से सुल्ह की थी तो एक गिरोह ने आपको आमादा करने की

सई–ए–ना काम की थी कि ''आप इस सुल्ह को न मानिए और अलग होकर मुआविया पर हमला कर दीजिए। देखिए सारा इराक़ आपका साथ देता है या नहीं? ईरान व खुरासान के लोगों को इस सुल्ह से बहुत मायूसी होगी। यमन के बहादुर भी इस इक़दाम को पसंद न करेंगे और यह ताज़ा दम फ़ौजें आपके इल्मे जिहाद के साए में शामियों से लड़ने में कोताही नहीं करेंगी। हुसैन मुदब्बिर बाप के दूर अंदेश फ़र्ज़न्द, सियासते वक़्त को ताड़ गए आपने फ़रमायाः ''हम वह नहीं हैं जो अहद करके तोड़ दें'' और सुल्ह व सफ़ाई की फ़ज़ा को फ़ितना व फ़साद के गुबार से तारीक बना दें'' दस्तावेज़े सुल्ह पर अमीरे शाम ने कभी पूरी तरह अमल नहीं किया इस लिए अहलेबैत(अ0) के जां निसारों और अली(अ0) के तरफ़दारों में हमेशा ग़म व गुस्सा फैला रहा। जब इमाम हसन(अ0) शहीद कर दिए गए तो कूफ़े की बासी कढ़ी में फिर उबाल आया। बहुत से लोग इमाम हुसैन(अ0) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहने लगेः ''अहद नामा करने वाला ही न रहा तो मुआहिदे की पाबंदी कैसी?'' अमीरे मुआविया खुद हर शर्त की ख़िलाफ़ वरज़ी कर चुके हैं और ज़हर देने की साज़िश करके तो वह बिल्कुल मुआहिदे की तौहीन कर चुके हैं। बिस्मिल्लाह कीजिए और मुआहिदे को कलअदम क़रार देने का एलान फ़रमा दीजिए।'' हज़रत ने फ़रमायाः ''मुआहिदे अमल करने के लिए किए जाते हैं, मुआविया अपने वादे के पाबंद हों या न हों, हमने जो वादा किया है उस पर हम कारबंद रहेंगे।''

आख़िर वह वक़्त भी आया जब मौत के फ़रिश्ते ने अमीरे शाम के दरवाज़े पर दस्तक दी और उनकी रूह व तन में जुदाई हो गई और मुआहिदे के ख़िलाफ़ यज़ीद मसनदे ख़िलाफ़त पर बिराजमान हुआ। मुआविया ने अपनी उम्र के आख़िरी दिनों में यज़ीद की ख़िलाफ़त के लिए जिद्दो जोह्द शुरू कर दी थी और धन, धौंस, धांदली और धींगा मुश्ती से उस मसनद नशीनी की राह साफ़ कर दी थी। मुआहिदे की रू से मुआविया के बाद हज़रत इमाम हुसैन(अ0) को तनहा मसनदे ख़िलाफ़त का हक़ पहुँचता था। मुआहिदे की पूरी मुख़ालेफ़त के बाद इमाम हुसैन(अ0) पर कोई पाबंदी बाक़ी न रह गई थी। वह चाहते तो जायज़ तौर पर अपने हक़ का मुतालबा कर सकते थे और उसके हुसूल के लिए फ़ौज कशी और क़बाएले अरब को खुरूज के ऊपर माएल कर सकते थे मगर उन्होने कोई पेश क़दमी नहीं फ़रमाई। मुआहिदे की रू से उनको यह क़ानूनी हक़ हासिल था कि वह हाकिमे मदीना वलीद को गिरफ़तार कर लेते और अपनी हुकूमत का एलान करके शहरों और सूबों में अपनी तरफ़ से हाकिम व गवरनर मुक़र्रर फ़रमा देते और अरब क़बाएल से बैअत लेना शरू कर देते। ये सब कुछ कर सकते थे उसी साबिक़ अहदनामे के तहत मगर हुसैन(अ0) यह उस वक़्त करते जब रियासत के तालिब होते, हुकूमत का क़याम अपनी क़यादत में मद्दे नज़र होता। इमाम हुसैन(अ0) ने यह कुछ न किया बल्कि सब्र फ़रमाया और सिर्फ़ इस लिए कि बात न बढ़े, मुल्क में फ़ितना व फ़साद बरपा न हो। आप मुसालेहाना तौर पर मदीना छोड़ कर मक्के की तरफ़ निकल गए। जो सारे आलम के लिए दारूल अम्न है और जहाँ बैठकर आदमी नौए बशर की सलामती और बहबूदी की तदबीरें तो सोच सकता है मगर मुल्क गीरी और दुनिया तलबी की हवस में मुबतला नहीं हो सकता है। कम से कम परवरदए आग़ोश

तरबियते रिसालत हुसैन(अ0) से तो किसी तरह यह तवक़्को नहीं रखी जा सकती थी कि वह ख़ानए ख़ुदा को दुनयवी सियासी साज़िशों का मरकज़ बनाएंगे। अगर हुकूमते वक़्त उनसे मुज़ाहेमत न करती और हाजियों के भेस में फ़ौजी दस्तों को उनके क़त्ल के लिए न भेजा जाता तो शायद वह कभी उस मुक़द्दस मक़ाम से अलग न होते मगर ख़ानए ख़ुदा की हुरमत का आपको इस क़द्र पास व लिहाज़ था कि जब यह ख़बर मिली कि लोग यहाँ भी ख़ूँरेज़ी से बाज़ न आएंगे तो मौसमे हज के क़रीब मक्के से रवाना हो गए। इमाम हुसैन(अ0) हाशिम व अब्दे मनाफ़ के वारिस, आमिर व इमरान के विरसे दार और रसूले अरबी(स0) व अली इब्ने अबी तालिब(अ0) के फ़र्ज़न्द थे। ऐसे लोग मौजूद थे जो आपको रिसालत मआब(स0) के कांधों पर सवार और सीने पर आराम करता देख चुके थे। अगर आप चाहते तो हज के मौक़े पर जब सारे आलमे इस्लाम के लोग जमा थे तो यज़ीद के ख़िलाफ़ राय आम्मा उस्तवार कर लेते और अरबी क़बाएल को दावते जिहाद देकर एक अज़ीम लश्कर इकट्ठा कर लेते, मगर यह उस वक़्त करते जब हुसैन(अ0) का मक़सद हुकूमत की दाग़ बेल डालना होती। हुसैन(अ0) का मक़सद हुकूमत नहीं था इस्लाहे उममत था इसी लिए ख़ामोशी के साथ मक्के से निकल आए। जा बजा क़बाएले अरब के मसाकिन से होकर गुज़रे उनके चश्मों और तालाबों पर क़याम भी किया मगर किसी क़बीले को अपनी हिमायत के लिए दावत नहीं दी और न भरती का कोई दफ़्तर खोला और न अपने अग़राज़ व मक़ासिद की तबलीग़ के लिए सफ़ीर भेजे। इससे पता चला कि हुसैन(अ0) उन लोगों में से न थे जो ज़ाती मफ़ाद और शख़्सी इक़तेदार की ख़ातिर तमाम दुनिया को तबाही के ग़ार में ढकेल देते हैं। हमारा इमाम मक्के से तो निकल आया। अब किसी तरफ़ जाना तो ज़रूर था। यज़ीद जैसे ज़ालिम व जाबिर की तवील व अरीज़ हुकूमत में इमाम हुसैन(अ0) जिस तरफ़ जाते, मौत आपके सर पर मुसल्लत रहती, कूफ़े के अलावा किसी मक़ाम से दावत नहीं मिली थी। ईराक़ का यह मरकज़ी शहर फ़ौज की छावनी था, उनके वालिदे बुज़ुर्गवार और बड़े भाई का दारूल ख़िलाफ़ा रह चुका था। यहाँ की आबादी में हज़ारों अफ़राद ऐसे थे जो हज़रत इमाम हुसैन(अ0) के ख़ानदान के इल्मी व दीनी फ़ुयूज़ व बरकात से बहरामंद हो चुके थे जिनको उनकी क़द्र व मंज़िलत का एतेराफ़ था और उसी मुआहिदे के चश्मदीद गवाह की हैसियत रखते थे जो उनके ख़ानदान और मुआविया के दरमियान हुआ था और उन गुफ़्तगुओं के सुनने वाले थे जो इस सिलसिले में वक़्तन फ़वक़्तन होती रही थीं। उस हालत को देखते हुए हज़रत कूफ़े न जाते तो किधर जाते? अम्न व अमान, ताईद व इमदाद की थोड़ी बहुत जो उममीद हो सकती थी कूफ़े ही से हो सकती थी। दूसरे शहरों ने तो झूटे मुँह भी आपको अपने यहाँ आने की दावत नहीं दी। मदीना पहले ही छुट चुका था। मक्के की हुरमत बरबाद होते देखना आपको गवारा न था। फिर उन दोनों शहरों के बाशिन्दे इनक़ेलाबी रूह से ना आशना होते हुए तक़द्दुस फ़रोशी में गिरफ़तार हो चुके थे। अरतशी तन्ज़ीम और फ़ौजी वलवले के बजाए उन पर मुजावरी की ग़शी तारी थी, वह पुरानी रिवायतों और मज़हबी अक़ीदों में ज़ियादा मसरूफ़ नज़र आते थे। ज़िन्दगी के अमली मुजाहिरों और ममलकत व मुआशरत के नित नए तक़ाज़ों से उनको दूर का भीकोई

लगाव नहीं था।

हुसैन(अ0) हिजाज़ से इराक़ की तरफ़ बढ़े, कूफ़ा उनकी मंज़िले मक़सूद था, अज़्म व इरादा यह था कि शहरी आज़ादी को बहाल कराएं, इस्लाम ने मुस्लिम की जो तारीफ़ की है कि उसके हाथ और ज़बान से किसी को कोई गज़ंद न पहुँचे और हर फ़र्द दूसरे की जान व माल, इज़्ज़त व आबरू और सलामती का ज़िम्मेदार है इसी सिफ़त को मुआशरे में राएज करें। चाहे उसको रिवाज देने में बड़ी से बड़ी कुरबानी ही क्यों न देनी पड़े। कूफ़े में मेरे बाप और भाई ने हक़ आशना और सुल्ह पसंद लोगों की जो जमाअत ख़ल्क़ कर दी थी उससे काम लेकर अंधेरे को उजाले, तारीकी को रोशनी ओर दौरे जुल्मो इस्तेबदाद को अद्ल व दाद गुस्तरी से बदल दें और अगर कूफ़े में यह इस्लामी माहौल और मआशी निज़ाम क़ायम न हो सका तो अपनी जान को कुरबान करके एक ऐसा मिनार–ए–हिदायत नस्ब कर दूं कि जो रहती दुनिया तक बनी आदम को अम्न व आश्ती की राह दिखाता रहे।

इमाम हुसैन(अ0) खूँरेज़ी को पसंद नहीं करते थे। वह इंसानी जान की हुरमत और अज़मते बशर के क़ाएल थे। दूसरों की शम्मे हयात गुल कर के अपना चराग़ जलाना नहीं चाहते थे और न ओछे हथियार इस्तेमाल करके ग़लबा और तसल्लुत हासिल करने के ख़्वाहिश मंद थे। जब यह नज़र आने लगा कि उमवी हूकूमत उनको चार जानिब से घेरकर बैअत पर मजबूर करना या जान लेना चाहती है तो उन्होंने मरदाना वार यह चैलेंज कुबूल किया और इस्लाम के शरीफ़ाना उसूले जंग की पाबंदी करके दुनिया को बता दिया कि दुशमन, मुख़ालिफ़ और हरीफ़े मैदाने विग़ा के भी कुछ हुकूक़ होते हैं जिन पर कारबंद रहना हर मुहज़्ज़ब और शाइस्ता फ़रीक़े जंग का फ़र्ज़ है। हुर के प्यासे लशकर को जो आपको घेर कर हाकिमे वक़्त के सामने पेश करने के लिए आया था, सेराब किया। उमरे साद को जो हुकूमते रय की लालच में आपके क़त्ल पर आमादा था, निहायत नर्मी, संजीदगी और शरीफ़ाना तरीक़े पर इस हरकत से बाज़ रहने का मशवरा दिया। आपने उसे समझाया कि मेरे क़त्ल के बाद यज़ीदी हुकूमत के ख़िलाफ़ जो इन्क़ेलाब बरपा होगा उसकी वजह से तुमहारी उम्मीदें पूरी न हो सकेंगी बल्कि जान तक ख़तरे में पड़ सकती है। अगर माल व दौलत की तमन्ना है तो मैं अपनी जायदाद तुमहारे नाम मुन्तक़िल किए देता हूँ। मज़े से ज़िन्दगी गुज़ारो और आले मुहम्मद(अ0) के खून से अपने हाथ रंगीन न करो। तारीख़ के आइने से वह ग़मनाक मंज़र भी ओझल नहीं जब ज़ख़्मों से चूर होकर आप ज़मीने गर्म करबला पर ख़ाक व खून में ग़लतां थे। उमरे साद लोगों को आपका सर क़लम करने के लिए भेजता था और आप क़त्ल का इरादा रखने वाले से फ़रमाते थेः ''मैं ज़ख़्मों से चूर हूँ, तीन रोज़ से भूका–प्यासा हूँ, सेरों खून मेरे जिस्म से निकल चुका है और दिल के टुकड़े और जिगर पारे आँखों के सामने एड़ियाँ रगड़ कर दम तोड़ चुके हैं, ज़ियादा अर्से तक ज़िन्दा न रह सकूँगा, तू क्यों अपने नबी के नवासे को क़त्ल करके वबाले दुनिया व आख़िरत मोल लेता है'' कई आदमी यह सुनकर वापस चले गए मगर शिम्र जो बला का क़सियुल क़ल्ब और ज़ालिम, इंसान नुमा दरिन्दा ख़सलत जानवर था, आपकी बात न मानी और उसके ख़ंजर ने हमारे इमाम के सर व तन में जुदाई कर दी।

क़ातिल खुद नक़्ल करता है कि जब तक सांस की आमद व रफ़्त बाक़ी रही, आप उम्मत की नजात के लिए दुआएं करते रहे। लब पर शिकवा था और न गिला दिल की गहराइयों से हम्दे इलाही और बख़शिशे उम्मत की इलतेजा की आवाज़ें आ रही थीं।

हम इमाम हुसैन(अ0) को अपना क़ौमी रहबर और दीनी पेशवा जानते और दो महीना आठ दिन खुसूसियत के साथ उनकी याद में मजलिस करते और जुलूसे अज़ा निकालते हैं। अगर उनके पाकीज़ा किरदार और बलंद अफ़कार को भी अपना लाइह–ए–अमल बनाएं तो नौए इंसानी की बड़ी ख़िदमत कर सकते हैं आज जहाँ–जहाँ भी मुसलमान आबाद हैं, सियासी हरबों की बदौलत नुक़साने माया और शमातते हमसाया के शिकार हैं।

अशरए मुहर्रम रस्मी तौर पर न मनाइए। यह हुसैनी दर्सगाह, इस्लामी तालीम को अज़ सरे नौ दोहराने और ज़िन्दगी को उसी अख़लाक़ी साँचे में ढालने का मौक़ा बहम पहुँचाती है जिसने बहत्तर जांबाज़ों को कम से कम तीस हज़ार की फ़ौज पर ग़ालिब कर दिया था, जहाँ हुसैन(अ0) की बे मिस्ल क़यादत ने अरब व अजम, रूमी और तुर्की और हबशी नस्ल के लोगों को नज़रयाती वहदत के ज़रिए शाना ब शाना खड़ा कर दिया था। आज भी फ़र्ज़न्दाने इस्लाम पर सख़्त वक़्त आते हैं और अस्रे हाज़िर की तख़रीबी कुव्वतें उन सलाहियतों को चैलेंज देती हैं। क्या आज़माइश की ऐसी घड़ियों में हम कारवाने करबला से रहनुमाई हासिल करते हैं या नहीं? तज़किर–ए–हुसैनी को ज़िन्दा रखना और हुसैनी सियासत, शुजाअत और क़ायदाना सलाहियत को मिसाल के तौर पर अपनी मौजूदा और आइंदा नस्ल के सामने पेश करना इस्लाम और मुसलमानों की बक़ा और तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी है।

(बकिया पेज नं 16 का .....)

यह खुदा तो अपने बंदों से भी ज़ियादा आजिज़ और बेबस है।

यह मौक़ा था कि यका यक उनके ज़मीरों की बिजली चमकी, उसने उनकी आंखों से औहाम व खुराफ़ात के पर्दे सरकाए, खलीले खुदा के इस ज़बरदस्त ज़ेहनी झटके ने कुछ देर के लिए उनके सोए हुए ज़मीर को बेदार किया, उसने चीख़ कर उनसे कहा कि ऐ बेवकुफ़ों! यह बुत जो तुम्हारे सामने अपने दुश्मन के ख़िलाफ़ गवाही तक नहीं दे सकते इस क़ाबिल नहीं हैं कि तुम उनकी परस्तिश करो, उनके और आम पत्थरों के दरमियान कोई फ़र्क़ नहीं है। बल्कि दूसरे पत्थर तो तुम्हारे काम आते और यह किसी मर्ज़ की दवा नहीं हैं।

यह वक़्त था कि बुत परस्तों ने अपने को सरज़निश की और कहा ''इन्नकुम अनतुमुज़ ज़लिमून'' तुम लोग, हां यक़ीनन तुम लोग ज़ालिम और सितमगर हो। यह मौक़ा था कि रसूले बातिन यानी ज़मीर रसूले ज़ाहिर यानी इबराहीम का हम आहंग हो गया। दोनों ने मिल कर आईने बुत परस्ती पर ख़त नस्ख़ खींच दिया।

अफ़सोस कि इस बेदारिए ज़मीर की उम्र बहुत मुख़तसर थी, चंद लमहों के बाद बुत परसतों का जमीर दोबारा ख़्वाबे गफ़लत में चला गया। औहाम व खुराफ़ात के तारीक पर्दे उनकी आंखों पर पड़ गए उन्होंने जनाब इबराहीम के जला डालने का हुक्म दे दिया।